International Journal of Information Movement Vol.1 Issue XII (April 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 96-102

# धारावाहिकों में निहित मूल्यपरक शिक्षा का तुलनात्मक विवेचन

**संगीता रानी**
शोधार्थी, पीएच.डी. (एजूकेशन)
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों में एक प्रवृत्ति है आनन्द या सौन्दर्य की अनुभूति। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवसाद, तनाव एवं थकावट जीवन को कमजोर करते हैं इन्हें दूर करने के साधनों में एक साधन काव्य या नाटक भी है। यह सुधीजनों एवं प्रतिभा सम्पन्न समाज की दीर्घकालिक खोज का परिणाम है। शास्त्रीय तथा भारतीय मान्यता के आधार पर महादेव शंकर ने आचार्य भरत को नाट्यशास्त्र के प्रणयन का आदेश दिया था जो पृथ्वी पर रहने वाली मानव जाति के आनन्द का साधन बन सके।[1] संस्कृत के आचार्यों ने इसे ब्रह्मानन्द के रूप में स्वीकार किया। धीरे–धीरे चिंतन का क्षेत्र बढ़ता गया और काव्य तथा नाटक दोनों विधाओं के माध्यम से लोक–कलाओं में इस आनन्द को रचने का प्रयास किया गया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि आज भी भारतीय नाट्यशास्त्र या काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त में जो आयाम या मार्ग निश्चित किए गए हैं वे पाश्चात्य की तुलना में अधिक हृदय ग्राह्य तथा संवेदनशील हैं।

पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त जब आनन्द के अतिरेक में पहुँचता है, उसके बाद उसका मार्ग अवरूद्ध हो जाता है चाहे वह प्राकृतिक सौन्दर्य हो या मानवीय सुन्दरता। भारतीय काव्य सिद्धान्त जब अतिरेक में पहुँचता है तो उसमें भावप्रवणता जन्म लेती है और वह सम्पूर्ण आत्म जगत को मथकर आनन्द का नवनीत तैयार करती है जो मानव के रोम–रोम को स्पंदित कर देता है। चाहे वह मतवाले हाथियों को वश में कर ले या दौड़ते हुए मृगों को रोक ले या विषधरों को माद से बाहर कर दे। मानव ही नहीं पशु–पक्षी भी शास्त्रबद्ध एवं राग रागिनी के वशीभूत हो जाते हैं। यह भारतीय साहित्य शास्त्र की गहराई और जीवन की अंतरंग अनुभूतियों में अभिषिक्त तथा तथा निमग्न रहने के कारण है। कालान्तर में लोक जीवन का विषय बनाने वाले लोक कलाकार अपनी प्रतिभा और क्षमता के बल पर इन आनन्दानुभूतियों को जन–जन में बाँटने लगे।

धीरे–धीरे युग और जीवन की दशा में परिवर्तन हुआ। शास्त्र के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा जीवन्त तथा चिरस्थाई बनाने के प्रयास किये जाने लगे। कलाकार समाप्त होने लगे पर कला को बचाया जाता रहा। इसी प्रयास ने जन्म दिया चलचित्र को। आज के तकनीकी युग में चलचित्र काफी पीछे छूट गया है परन्तु उसकी आवश्यकता और महत्व कम नहीं हुआ। साधन तथा उपकरण में भले ही बदलाव आया हो पर साध्य नहीं बदले।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपनी प्रतिभा और कला के द्वारा दो चलचित्र निर्देशक श्री रामानन्द सागर और श्री बी.आर. चोपड़ा ने अपने निर्देशन एवं कला पारखी दृष्टि के माध्यम से भारतीय जनजीवन के हृदय में सात्विक आस्था का जो स्थान पाया है वह अन्य किसी कलाकार के द्वारा सहज नहीं हो सकता। दोनों निर्देशकों ने केवल निर्देशन का ही कार्य नहीं किया है अपितु अपनी नाट्यकला में उन्होंनें नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का भी पालन किया है। विषयवस्तु का चयन, पात्रों का चयन तथा कथा का प्रवाह निश्चित ही अपने उद्देश्य तक ले जाने में सफल रहा है। रामानन्द सागर द्वारा रामायण और जय श्री कृष्णा तथा बी.आर.चोपड़ा द्वारा महाभारत जैसे धार्मिक धारावाहिकों ने जो ख्याति प्राप्त की वह सामान्य बात नहीं थी। इनकी लोकप्रियता का लिखित और लिपिबद्ध अभिलेख भले न हो परन्तु इन धारावाहिकों के प्रसारण के समय भारतीय जनता का ध्यान, रूझान और कथा के प्रति आस्था का प्रमाण उसके प्रसारण के समय पर जगह–जगह सड़कों पर सूनापन, घरों में टी.वी. सेट के सामने अगरबत्ती का जलाना, टी.वी. सेट की बिक्री का बढ़ना आदि में देखा जा सकता था।

इधर कई दर्शकों से टी.वी. की दुनियाँ में अनेक धारावाहिक अनेक चैनल पर दिखाए जा रहे हैं परन्तु रामायण, महाभारत और जय श्री कृष्णा जैसे धारावाहिकों ने जो स्थान, मान्यता और श्रद्धा तथा भक्ति के रूप में भारतीय जीवन मूल्यों को संप्रेषित करने में सफलता प्राप्त की है वैसा अन्य धारावाहिकों में नहीं दिखाई पड़ती। इसका एक कारण यह था कि भारतीय धर्मप्राण जनता का राम और कृष्ण के प्रति अनुराग पर दूसरा कारण यह भी था जो टी.वी. के धारावाहिकों द्वारा देखा गया।

शोधार्थी संगीता के मन में इस बात को लेकर सदैव मन्थन चलता रहा कि क्या धर्मप्राण भारत के लोगों ने रामायण या महाभारत को इसलिए अधिक आदर दिया कि ये दोनों धारावाहिक धार्मिक हैं या अन्य कुछ? निश्चय ही इस प्रश्न का उत्तर कुछ सरल नहीं है परन्तु इतना अवश्य है कि यदि इस अध्ययन में दर्शकों से दत्त संकलन कराया गया होता तो सर्वाधिक मत धर्म के पक्ष में होते। दोनों धारावाहिक धर्म से जुड़े हैं और राम तथा कृष्ण दोनों इस धर्म के केन्द्रीय देवता हैं। राम और कृष्ण को देवता या ईश्वर या परमात्मा के रूप में अभी भी अधिकांश लोग मानते हैं। उनके सामने तर्क या विज्ञान का महत्व नहीं है, महत्व है अध्यात्म एवं श्रद्धाभूत आस्था तथा विश्वास का।

राम और कृष्ण दार्शनिक दृष्टि से लोकनायक हो सकते हैं परन्तु यह प्रबुद्ध और विद्वानों के वैचारिक संतुष्टि तक ही सीमित है। आज भी भारतीय जन–जीवन में राम और कृष्ण जिस ऊँचाई तक पहुँचें हैं वह निर्गुण, निर्विकार, अविनश्वर आदि उपादानों से ही जाने जाते हैं। अनेक कथाएँ, काव्य, नाटक तथा साहित्य की विविध विधाओं में उनके जीवन को उकेरने का प्रयास किया गया। सब ने अपने–अपने ढ़ंग से उन्हें संवारा सजाया पर रामानन्द सागर और बी.आर.चोपड़ा ने अपनी तूलिका तथा भाव प्रधान शिल्पकला के साथ जो मूर्ति तैयार की और उसे जिस रूप में लोकमानस का आराध्य बनाया वह शायद शोध और गवेषण की सीमा से परे जा चुका है। यह बात शोधार्थी किसी आध्यात्मिकता या भाव विह्वलता के कारण नहीं कह रही है अपितु उसने इन धारावाहिकों के संचालन और प्रसारण के समय भारतीय जनता की रूचि और जिज्ञासा को पहचान कर कहा है। यह समय और संयोग की बात है कि शोधार्थी के मन में दो दशक पुराना पड़ा संस्कार का बीज कुछ बड़ा हुआ और इस दिशा में शोध करने का अवसर उसे मिला।

शोधार्थी इस तथ्य से भलीभाँति अवगत है कि रामायण और महाभारत के कथानक धर्मशास्त्र, अध्यात्म, शिक्षा, साहित्य, सामाजिक विषयों, मानवीय विषयों में किसी न किसी प्रकरण के रूप में शोधकार्य से जुड़ते रहे परन्तु जहाँ तक शोधार्थी की मान्यता है कि इन कथानकों को चित्रपट के माध्यम से जीवनमूल्य के रूप में शोध का विषय नहीं बनाया जा सका है। इस आकांक्षा के परिप्रेक्ष्य में शोध को एक दिशा देने का प्रयास इस स्तर तक जा पहुँचा। ऐसे धारावाहिकों की मूल कथा और उसके संदर्भ के साथ शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक मूल्यों पर शोध कार्यों की एक लम्बी श्रृंखला है इन्हें गिनना या बताना कठिन है क्योंकि राम और कृष्ण के चरित्र केवल औपचारिक शिक्षा से ही नहीं जुड़े हैं अपितु संतो, भक्तों, ऋषियों, आचार्यों, राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, शिक्षाशास्त्रियों तथा दार्शनिकों के अनेक मतों, पंथों, परम्पराओं ने उन्हे अपने–अपने ढ़ग से समझने का प्रयास किया है।

शोधार्थी की समीक्षा का मूल बिन्दु इन कथाओं के दृङ्किोण तक सीमित नहीं है अपितु शोधार्थी संगीता यह समझने का प्रयास कर रही है कि जब ये कथानक या इनके नायक साहित्य से रंगमंच और रंगमंच से इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में जा पहुँचे तब दर्शक या श्रोता उन्हें क्या उसी रूप में समझ रहा है, जिस रूप में हजारों लाखों वर्ष से भारतीय जीवन में रचे–बसे हैं? यहाँ यह कहना आवश्यक है कि इस दृष्टि में यदि कहीं परिवर्तन आया है तो वह इसे प्रस्तुत करने वाले सूत्रधार निर्देशक की कला के कारण हुआ है। केवल राम और कृष्ण के कारण ही इन धारावाहिकों को ख्याति प्राप्त हुई यह कहना गलत होगा। इसका श्रेय बहुत हद तक रामानंद सागर और बी.आर.चोपड़ा के निर्देशन देने, प्रदर्शन कराने और कथानक को जीवन्त बनाने की शैली को है, अन्यथा इन्हीं नायकों के ऊपर सिनेमा तथा अन्य अनेक छोटे–छोटे धारावाहिक बने किन्तु इतने लोकप्रिय नहीं हुए। वर्षों तक टी.वी. के माध्यम से मानव की धर्मप्राण, आस्थावान जनता के मन–मस्तिष्क पर छाये रहने वाले राम कृष्ण ही यदि विषय बनते तो अरूण गोविल या नितीश भारद्वाज को जनता फूलों की माला क्यों पहनाती? उनके चरण छूकर उनके अभिनय कला के प्रति अपनी धार्मिक निष्ठा क्यों प्रकट करती? शोधकर्ता ने स्वयं अनुभव किया है और देखा है कि दर्शकों के सामने भरत, कैकयी, सीता आदि के उपस्थित होते ही उनके प्रति भावात्मक प्रतिक्रिया उभर जाती थी। इसका अर्थ है कहीं न कहीं ये टी.वी. के कलाकार दर्शकों को उनके अपने व्यक्तित्व से अलग हटाकर कलाकारों के साथ जोड़ देते थे।

काव्यशास्त्र की दृष्टि से समीक्षा करें तो कहा जा सकता है कि रस में निहित साधारणीकारण की स्थिति यही होती है। संस्कृत के आचार्यों अभिनवगुप्त, शंकुक और हिंदी के आचार्यो आचार्य शुक्ल और डॉ. नागेन्द्र[2] ने साधारणीकरण व्यापार को इसी रूप में देखा है कि रंगमंच के कलाकार को दर्शक मूल रूप से भुलाकर कथानक के वास्तविक पात्र के रूप

में देखने लगता है अर्थात् दर्शक के सामने अरूण गोविल या नितीश भारद्वाज राम, कृष्ण बन जाते हैं और दर्शकों को उनके प्रति रामत्व और कृष्णत्व का भाव उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण उसे आनन्द प्राप्त होता है। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो रसानुभूति नहीं हो सकती। रसानुभूति होना और दर्शक के मन में पात्र के प्रति आस्था तथा निष्ठा होने के कारण ही तो ऐसे धारावारिक वर्षों तक चलते रहे और आज भी अनेक चैनलों पर चलाए जा रहे हैं, और उनकी जीवन्तता पूर्ववत बनी हुई है। उनके कथानक आज भी हमारी सांस्कृतिक छवि में चित्रित हो रहे हैं।

तीनों ही धारावाहिकों को भारत में ही नहीं भारत के बाहर भी लगभग दुनिया के तमाम देशों में विचारधारा की विभिन्नताओं के बावजूद सराहा गया। भारतीय दर्शन न केवल भारत में बल्कि अन्यत्र भी मानव मूल्य की स्थापना और पुर्नस्थापना में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। तीनों ही धारावाहिक किसी गूढ़ विषय पर आधारित नहीं होकर जनसामान्य के मन मस्तिष्क में आसानी से स्थान पा लेने वाली सादी सरल भाव शैली में प्रस्तुत हुए अतः इनको आधार मान कर इनमें समाहित जीवन मूल्य निश्चय ही अपनाने में सुग्राह्य हो सकते हैं इन धारावाहिकों में समाहित जीवन मूल्य इस प्रकार देखे जा सकें कि सभी वर्ग के व्यक्तियों के लिए अपनाने, अनुकरणीय रूप में प्रस्तुत किए जा सकें।

धारावाहिकों की मूलकथा को रामानंद सागर या बी.आर.चोपड़ा ने भले ही न बदला हो परन्तु उन्होंने उन शाश्वत नियमों, सिद्धान्तों या मानकों को पूर्णतया ध्यान में रखा है जो एक नाटक, कथा या काव्य के लिए आवश्यक हैं अथवा जिनका प्रतिपादन आचर्य भरत जी के नाट्यशास्त्र में किया गया है। उन्होंने पात्रों को, विषयवस्तु को, चित्रण करने की विधा और कला को इस ढ़ंग से संवारा है जो अपने उद्देश्य की पूर्ति तो कर ही देती है साथ ही साथ दर्शकों को अपने से बांधे रखती है। दर्शक भी इन धारावाहिकों के प्रति पूर्ण समप्रण के साथ बंध जाता है।

शोधार्थी ने इन धारावाहिकों में निहित मूल्यों पर अपना ध्यान केंद्रित किया था। कहना न होगा कि इन कथानकों में जो मूल्य पौराणिक या शास्त्रीय रचना के साथ कथावस्तु में जोड़ दिए गए हैं वे ही मूल्य धारावाहिकों में भी खोजे गए हैं। कोई मूल्य अलग से न तो दिखाया गया है और न ही दिखाया जाना संभव है क्योंकि यदि निर्माता निर्देशक अलग से कोई नीति, नियम, मूल्य या मानक का प्रतिपादन करता है तो उसकी कथावस्तु प्रभावित होती है और दर्शक यदि उसे सत्य मान लेता है तो उसकी तन्मयता या एकाग्रता प्रभावित तो होती ही है साथ ही वह कथानक समीक्षा और आलोचना का विषय बन जाता है।

इन कथा पात्रों में दोनों राम और कृष्ण को नायक माना गया है जो समाज की जीवन्त परम्परा और आदर्श तथा मान्यताओं को ढोने वाले हैं, स्वस्थ समाज का नेतृत्व करने वाले हैं। भारत ही नहीं, विश्वभर के लोग इन दोनों लोक नायकों को महामानव के रूप में स्वीकार करते हैं। राम और कृष्ण के जीवन चरित्र केवल तत्कालीन दानवी या आसुरी शक्तियों के संहार के लिए ही उधृत नहीं हुए, अपितु युगों–युगों तक मानव समाज इनके जीवन आदर्शों में अपनी स्थिरता और अस्मिता को अक्षुण्ण रखने के लिए भी हुए। यह चरित्र जीवन की समस्याओं का समाधान खोजता रहेगा, इनसे प्रेरित होता रहेगा। राम–कृष्ण ही नहीं, बुद्ध, महावीर, नानकदेव, ईसामसीह, मुहम्मद साहब आदि भी किसी न किसी रूप में हमारे दैवीय अवतारों की मान्यताओं के दृष्टान्त हैं।

कालखण्ड के अनुसार चूंकि वे अपेक्षाकृत नए लगते हैं अतः उनपर बनने वाले कथाचित्र या धारावाहिक आम जनता के दिल तक उतने नहीं उतर पाते। दूसरी बात यह है कि सनातम धर्म जिसका एक हिस्सा वैष्णव मत है, जो वैदिक धर्म के रूप में जाना जाता है, वही मानव धर्म आज भी है। इसके विरोध में जो भी मत, पंथ या सम्प्रदाय विकसित हुए उनकी उतनी ही संदेहास्पद ऐतिहासिकता रही। यही कारण है कि बौद्ध या जैन धर्म जो सनातन धर्म की कुछ रूढ़ियों और अतिवादिता की समीक्षा में लगा कि वह धीरे–धीरे उनकी विशिष्ठता धूमिल होती जा रही है उनकी पहचान कम होती जा रही है। मानव धर्म या वैदिक धर्म या सनातन धर्म न तो किसी व्यक्ति द्वारा प्रणीत है, न इसका किसी मानव ने प्रवर्तन किया है। यह सम्पूर्ण मानव जाति को सुखी, शान्त एवं समृद्ध बनाने वाला है। अतः इसे जाति, वर्ग, वर्ण, सम्प्रदाय आदि के रूप में यदि किसी ने बांटने का प्रयास किया या इसके विरोध में अपनी मान्यता स्थापित करने का प्रयास किया तो वह स्वतः नष्ट हो गया या उसकी मान्यता या अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न खड़े हो गए।

रामायण एवं महाभारत ऐसे महाकाव्य हैं जिनमें इतने मानवीय मूल्य समाहित हें जो आमजन की दैनिकचर्या से इतने नजदीक और घुले मिले हैं कि उनकी आलोचना का कोई आधार ही नहीं बनता। रामायण के राम मर्यादा पुरूषोत्तम थे उनके कार्य व व्यवहार किसी जनआलोचना से परे थे। जहाँ उनकी आलोचना हुई उन्होंने स्वयं इसे स्वीकार किया और जनआलोचना को स्वीकार किया। राम के किए कार्य जन–जन की अपेक्षा व आकांक्षा के अनुकूल थे, राम और कृष्ण दोनों ने अपने जीवन में किसी अन्य की आलोचना नहीं की तो उनके कृतित्व पर आधारित महाकाव्य एवं धारावाहिक भी आमजन के आलोचना का विषय नहीं होकर सम्माननीय हैं ओर इनमें समाहित जीवन मल्यों को इस प्रकार प्रस्तुत करने की आवश्यकता महसूस की गई कि वे जनसाधारण के लिए पुनः प्रेरणा का स्त्रोत बने रहे।

शोधार्थी उन कथाओं या पात्रों की यहाँ न तो तुलना कर रही है और न ही उनकी किसी टीका–टिप्पणी को प्रामाणिक मानता। इसलिए यहाँ निर्विवाद कहा जा सकता है कि रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्यों में प्रणीत जीवन मूल्यों की जो शाश्वतता आज बनी हुई है और जिनमें जो समरसता के बीज पड़े हुए हैं, जिनमें सांस्कारिक जीवन के प्राणतत्व सुरक्षित हैं, जहाँ प्रकृति और मानव के बीच एक चैतन्यशील व्यापार बना हुआ है, उनके कथानक या उस विषय वस्तु को कम नहीं आँका जा सकता। राम और कृष्ण का अवतरण युगों के संधिकाल में हुआ है। परिवर्तन की आवश्यकता तथा समाज को जड़ता से मुक्त करने के लिए इन दोनों लोकनायकों का अवतरण हुआ। इतिहास के वृतान्त यह संकेत करते हैं कि जब भी समाज अस्थिर हुआ, उसे दबाव की अनुभूति हुई, स्वस्थ मान्यताओं पर जब भी कुठाराघात हुआ, आसुरी और दानवी प्रवृतियों का जब भी प्रभुत्व बढ़ा, उस समय हमारे समाज के अन्दर विद्रोह का स्वर उभरा है, उसे सशक्त नेतृत्व मिला, और उसे सफलता भी मिली। यही कार्य किया था राम और कृष्ण ने।

श्रीकृष्ण और श्रीराम के व्यक्तित्व में अलग–अलग जीवनमूल्य दिखाई पड़ते हैं। श्रीराम अपने जीवन और रावण वध के बीच केवल एक ही कलवेर धारण किए हुए हैं। जन्म और युवाकाल के बीच की दूरी बहुत कम है। कृष्ण के जन्म से महाभारत युद्ध के बीच कृष्ण के दो व्यक्तित्व उभरते हैं – एक बाल कृष्ण जहाँ जीवन स्वतंत्र, सरल, सहज और बालचपलता तथा नटखटपन से अभिसिंचित है। दूसरा व्यक्तित्व आसुरी शक्तियों के संहार का है। कंस, शिशुपाल और जरासंध के अतिरिक्त कुछ अन्य दानवी शक्तियों, शकटासुर, बकासुर, कालीयनाग आदि के वध में उनका युवा शौर्य दिखाई पड़ता है। श्रीराम ने अनेक दानवों को मारा परन्तु उनके धीर–गम्भीर और शान्त मन को न तो विरक्ति मिली, न ही उद्वेग। वे समरस समभाव से अपना कर्म करते रहे। चाहे ताड़का, सुबाहु का वध या सीता स्वयंवर अथवा परशुराम विवाद हो, वे सर्वत्र शान्त एवं निश्छल रहे। यद्यपि सूर्यवंशी राजाओं में ऊष्णता का परिपाक सब में था, केवल दो राजा ऐसे हुए जिनके नाम के आगे चन्द्र था एक थे हरी न्द्र और दूसरे रामचन्द्र। इनमें राजधर्म की तुलना में प्रजावत्सलता तथा लोकरंजन के गुण अधिक थे।

श्रीकृष्ण सूर्यवंशी राजा नहीं थे। ये मथुरा के आस–पास रहने वाली यादव जाति के (उस समय मैथोर) विष्णि या सातत्व शाखा में पैदा हुए थे।[3] श्रीराम यज्ञ और याज्ञिक संस्कृति के पक्षधर थे, जब कि कृष्ण इसका विरोध करते थे। राम अपने राज्याभिषेक के बाद व्यावहारिक धरातल पर वहीं रहते है जहाँ वनगमन के समय थे, परन्तु महाभारत के कृष्ण वह कृष्ण नहीं है जो गोपियों का माखन चुराते अथवा उनका चीरहरण करने का कुतूहल करते थे। इसीलिए कृष्ण को नटराज कहा जाता है, राम को नहीं। राम वैचारिक धरातल पर कृष्ण की तुलना में विनम्र अधिक हैं, शीलवान हैं तथा जीवन पर्यन्त मानव मर्यादा जैसे मूल्यों के संवाहक एवं संरक्षक है। अहिल्या, शबरी, तारा, मंदोदरी के साथ उनके व्यवहार में मातृवत्सलता के साथ–साथ मानवीय संस्कृति में निहित नारी मर्यादा का अगाध समुद्र है परन्तु श्री कृष्ण इस दृष्टि से कुछ छोटे पड़ जाते हैं। राम उस राज्य के राजा है जिसे न राम चाहते है न भरत और कृष्ण बिना राज्य के ही रानी और रनिवास से जुड़े हैं, राम राजा होकर भी रानी और रनिवास की संस्कृति से मुक्त हैं।

शोधार्थी की दृष्टि से ऐसे उपाख्यान केवल कहानी के लिए नहीं हैं, अपितु दो युगों की सांस्कृतिक एवं धार्मिक जड़ता से मानव जीवन को मुक्त कराने के सफलतम प्रयासों की गाथा के रूप में भी है। क्या आज का विश्व राम और कृष्ण की युगानुरूपी नेतृत्व कला से कुछ सीख सकेगा? आज अस्त्र–शस्त्र की भागमभाग में जीवन के जो कुचक्र तैयार किये जा रहे है, श्रीराम और कृष्ण का व्यक्तित्व क्या उनसे बच सकता है? चारों तरफ चक्रव्यूह तैयार है, अभिमन्यु नहीं दिखाई देता, क्योंकि इस चक्रव्यूह के आसपास कृष्ण नहीं, गांधारी, धृतराष्ट्र, शकुनी, दुर्योधन जैसे अंधों एवं अहंकारियों का दम्भ फैला हुआ

है। सम्पूर्ण विश्व ऐसे विवर्त में फँसा जा रहा है जिसका कोई ओर–छोर नहीं। अपने बनाए हुए अभेद्य परमाणु दुर्गों के भीतर कैद रहने वाली मानवता अब बाहर आने का मार्ग भी भूल चुकी है। हमारे द्वारा निर्मित किले की दीवारें भीतर का आर्तस्वर बाहर जाने ही नहीं देतीं। इसीलिए हम अब भीतर ही भीतर अपनी ही विवशता पर आंसू बहा रहे हैं।

हम जानते हैं कि राम के राज्य में सबकुछ था, सेना ही नहीं थी। आवश्यकतानुसार राजा स्वयं सक्षम और समर्थ होता था जो अकेले पूरे राज्य की सुरक्षा करता था। इसलिए अयोध्या शब्द सार्थक और गम्भीर अर्थ देता है – अयोद्धा, जहाँ योद्धा थे ही नहीं, या जहां के समान विश्व में योद्धा नहीं थे। अवध का अर्थ है जहाँ हत्या या वध नहीं था। क्या ऐसी परिभाषा आज इस शब्द को मिल सकती है? हम सभी जानते हैं कि राम की अयोध्या को 80 एवं 90 के दशक में जिस छल–छद्म से मन्दिर–मस्जिद के झगड़े में घसीटा गया और जो कुछ हुआ, क्या वह राम राज्य अथवा भारतीय संस्कृति या धर्म की दृष्टि से इस आर्यावर्त के महान संतों, ऋषियों और आयार्चो को श्रद्धांजलि दे सकेगा। अगर ऐतिहासिक दृष्टि से किसी यवन शासक ने भूल, प्रमाद या अंहकार में कोई गलती कर दी, मंदिर तोड़ दिया, तो क्या वही गलती पुनः दुहराकर हम जीवन मूल्यों की स्वस्थ परम्परा को जीवित रख सकेंगे या इससे हिंसा का विषाक्त वातावरण तैयार होगा? भारत की गंगा–यमुनी छवि को भवन तोड़कर या नया भवन बनाकर नहीं बचाया जा सकता। इसके लिए जनमानस के बीच शान्ति, स्नेह सौहार्द्र का वातावरण बनाना पड़ेगा और यही कार्य किया था रामयण, महाभारत के धारावाहिकों ने। इन धारावाहिकों को जाति, धर्म, संस्कृति, विचार, पंथ, मत, भाषा, सम्प्रदाय, समुदाय में बांट कर तैयार नहीं किया गया था और न ही उन्होंने किसी विशेष वर्ग को प्रभावित किया। धर्म और संस्कृति के अन्धविश्वासो में जकड़ा हुआ कट्टर से कट्टर व्यक्ति भी इन धारावाहिकों की मूल संवेदना से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

यद्यपि श्रीकृष्णा धारावाहिक भी महाभारत कि मूल कथा संयोजन से ही तैयार किया गया है परन्तु इसमें कृष्ण के चरित्र का सम्पूर्ण दिव्य दर्शन कराया गया है। महाभारत के कृष्ण प्रौढ़ कृष्ण हैं जहां चिंतन, तर्क एवं विवेचना का आश्रय लेकर एक महासंग्राम का नेतृत्व किया गया। विश्व विख्यात ऐसा भीषण संग्राम जो युगों–युगों तक युद्ध और शान्ति के निहितार्थ की समीक्षा करता रहेगा ऐसे महाभारत में अपने रण कौशल से शत्रुओं को स्तब्ध कर देने वाले आयुध विहीन श्री कृष्ण में जो कला – कौशल था क्या उसे आज के संप्रभुता सम्पन देश समझ सकेंगे? क्या ब्रज की गलियों में दूध दही छीनकर या चुराकर खाने वाला बालक सम्पूर्ण संसार के लिए कर्म योग का उपदेशक बन सकता है जिसे जगत गुरू के रूप में आज भी स्मरण किया जाता है।

युग पुरोधा श्री कृष्ण का चरित्र जितना सरल सहज और अबोध बालक का है जो अपनी माँ से चन्द्रमा को खिलौना समझकर मांग कर रहा है, वही श्री कृष्ण ग्वाल बालकों के साथ मथुरा वृन्दावन की गलियों में मित्र मण्डली बनाकर खेल खेलते हुए कंस और चारूण–मल्ल जैसे दानवी वृत्तियों का संहार करता है। महाभारत में जिस बौद्धिक परिपक्वता के साथ श्री कृष्ण का चरित्र उभारा गया और कर्मयोगी के रूप में जो भविष्य की पीढ़ियों का नायक बना है वह निश्चित ही जीवन मूल्यों को शाश्वतता एवं निरन्तरता प्रदान करने वाला हुआ। राम अपने जीवन दर्शन एवं जीवन दृष्टि के साथ अधिक सजीव है। कृष्ण का लक्ष्य घटना के साथ तैयार होता है, राम के कार्य लक्ष्य का पीछा करते हैं।

धारावाहिकों में राम एवं कृष्ण के चरित्र को ब्रह्म विधायी रूप देने का न तो प्रयास किया गया है न ही करना उचित था। भक्ति की दृष्टि से या आध्यात्मिक दृष्टि से यदि इन्हें ब्रह्म मान भी लिया जाये तो कोई असंगत नहीं होगा। शोध की दृष्टि से ब्रह्म मान लेने पर आगे के चिन्तन एवं विचार करने की प्रक्रिया पर विराम लग जाता है। अतः शिक्षा की दृष्टि से राम और कृष्ण का चरित्र सामने रखना इस शोध की आवश्यकता है। दोनों व्यक्तित्व छात्र से उठकर गुरू की गुरूता तक पहुँचते हैं। चित्रकूट प्रसंग में राम की बौद्धिक परिपक्वता वशिष्ठ से आगे जा चुकी थी और उन्हें कहना पड़ा कि मैं राम और भरत को नहीं समझ सका। महाभारत में द्रोणाचार्य एवं भीष्म भी कृष्ण की गुरूता से मोहित हुए बिना नहीं रह सके। द्रौपदी और द्यूत प्रसंगों की तार्किक समीक्षा में सम्पूर्ण हस्तिनापुर मंत्रमुग्ध हो गया। यहाँ शोधकर्ता यह भी उद्घाटित करना उचित समझता है कि रावण वध व महाभारत दोनों कालान्तकारी युद्धों की नींव भी इन्हीं दोनों घटनाओं के साथ पड़ गई।

भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की यह एक ऐसी करवट थी जो आज तक शिक्षा जगत को अपनी तन्द्रा का आभास करा रही है। गुरूकुल जीवन शैली में रचा–बसा एवं दीक्षित संस्कार का जो मूल्य राम एवं कृष्ण ने चुकाया

वह आज के छात्र जीवन में सम्भव नहीं है। जब भी गुरूता का अनादर हुआ, गुरू का अपमान हुआ तब–तब भारतीय शिक्षा जगत को अमानवीय मूल्यों के साथ जूझना पड़ा। गुरू कोई व्यक्ति नहीं होता, गुरू श्रद्धा एवं विश्वास के धरातल से उपजा हुआ आत्म बोध है जिसका पल्लवन होने पर जीवन की सभी संभाव्य वर्जनाएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। अर्जुन को जो शिक्षा कृष्ण ने दी उसका प्रमुख लक्ष्य संशयग्रस्त अर्जुन के हृदय को कार्यशील बनाना था।[4]

आज कोई गुरू अपने शिष्य को न तो संशय मुक्त कर पा रहा है न ही शिष्य के भीतर अपने गुरू के प्रति श्रद्धा और विश्वास है। राम स्वयं श्रद्धा–विश्वास का पात्र लिए विश्वामित्र के पीछे–पीछे जनकपुर तक पहुँच जाते हैं। एक अपने जीवन काल में माता–पिता, गुरूओं, ऋषियों एवं आचार्यों के सान्निध्य में स्वतः जाते हैं और शनैः–शनैः धर्म–कर्म सम्मत शिक्षा ग्रहण करते हैं। राम का प्रौढ़, यौवन और जीवन सदैव अनुशासित, विनम्र एवं जिज्ञासु छात्र का रहा है। कृष्ण का जीवन एकाग्रता से भरपूर बालक का रहा है, छात्र का नहीं। इसलिए राम ने कभी गुरू रूप में या उपदेष्ठा के रूप में अपना स्थान बनाने का प्रयास नहीं किया क्योंकि रावण आदि राक्षसों का संहार करने के लिए राम स्वयं योद्धा के रूप में तीर तरकश उठाते हैं जबकि कृष्ण ने महाभारत में स्वयं युद्ध नहीं किया अपितु पाण्डव सेना का नेतृत्व करके गुरू, सेनानायक, योद्धा एवं रणनिर्देशक की सफल भूमिका का निर्वाह किया।

यहाँ शोधार्थी संगीता शैक्षिक दृष्टि से राम एवं कृष्ण के व्यक्तित्व में विरोधी गुणों की समता या विषमता का उल्लेख नहीं करना चाहती अपितु उन परिस्थितियों, मूल्यों एवं मान्यताओं का उद्घाटन करना चाहता है जो दो युगों की धार्मिक तथा सांस्कृतिक विविधता के परिपोषण से आगे बढ़ी थीं। यही तो रामत्व और कृष्णत्व का जीवन धर्म और दर्शन का आलोक है। राम प्रजा के करीब हैं–अपने शील, सौन्दर्य एवं विनय से। कृष्ण अपने परिजनों एवं परिवारजनों के निकट हैं अपने साख्य एवं मैत्री भाव के कारण। इसका कारण है दोनों की शिक्षा दीक्षा के जनपरिवेश में भिन्नता का होना।

रामकालीन शिक्षा जहाँ ज्ञान–बुद्धि–विवेक के झरोखे से मानव मूल्यों को देखने का प्रयास करती है वहीं कृष्ण की शिक्षा संदीपनि ऋषि के आश्रम में होती है जहाँ जीवन की गंभीरता एवं गहन परिपक्वता के साथ मूल्यों का मूल्यांकन नहीं किया जाता। सरल,सहज एवं प्रवाहपूर्ण जीवनचर्या में कृष्ण का पूरा व्यक्तित्व अभिषिक्त है। इसीलिए राम प्रतिज्ञाबद्ध होकर धर्म, मर्यादा, संस्कृति तथा मानव मूल्यों को पूर्ववत ले चलते हैं। वे परिवर्तन एवं संशोधनों में कम विश्वास करते हैं लेकिन कृष्ण कदम–कदम पर मानव मूल्यों को युगानुरूप तथा आवश्यकता के अनुरूप समीक्षा और तर्क का आधार प्रदान करते हैं। यदि आवश्यक होता है तो शत्रु को बिना सूचना दिए ही वध कर देना उचित समझते हैं। राम ने तो रावण को सीता हरण के बाद दो बार दूत भेजकर संधिप्रस्ताव भी दिया पर कृष्ण ने स्वंय दूत का कार्य किया और आवश्यकता पड़ने पर सम्पूर्ण राज्यसभा के निर्णय को सुने बिना ही छोड़कर चल दिये। राम एवं कृष्ण की शिक्षा में धर्म की प्रधानता अलग–अलग रही है। राम उस धर्म का अनुकरण करते हैं जो पूर्वजों अग्रजों द्वारा चलाया गया है, कृष्ण उसमें परिवर्तन कर अतार्किक रूढ़ियों एवं मान्यताओं तथा परम्पराओं को समाप्त करते रहते हैं।

तीनों धारावाहिकों में राम और कृष्ण द्वारा प्रतिपादित जीवन दर्शन को पूर्ण रूपेण न्याय संगत एवं ईमानदारी से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। रामानन्द सागर एवं बी.आर.चोपड़ा की दृष्टि जहाँ धारावाहिकों को लोकप्रिय बनाने के लिए माध्यम एवं साधन तलाश रही है वहीं दूसरी ओर मूल कथावस्तु से छेड़–छाड़ न करके दोनों निर्देशकों ने भारतीय मानस की मूल भावना का आदर किया है। दोनों के व्यक्तित्व में धारावाहिकों का मूलस्वरूप यथावत प्रकट करने का गुण रहा है। धारावाहिक का निर्माता यदि लोकप्रियता बढ़ाने के लिए मूल कथा में संशोधन भी करता है तो उसे अनुचित नहीं माना जाता परन्तु यदि संशोधन के कारण उसे समाज का तिरस्कार या निंदा का पात्र बनना पड़ता है तो उसको आर्थिक एवं व्यावसायिक दोनों दृष्टियों से हानि उठानी पड़ती है। रामानंद सागर एवं बी.आर.चोपड़ा दोनों ही इस दृष्टि से सजग एवं जागरूक हैं। इसीलिए इन हमारे धारावाहिकों के निर्माण में रामायण, महाभारत या श्रीकृष्ण की मूल कथा तथा उससे जुड़ी भारतीय संवेदना का पक्ष यथावत बना हुआ है। धारावाहिक की सफलता का श्रेय इसी कारण से है और शोधकर्ता ने इसे पहचानने का प्रयास भी किया है। उसका यह भी प्रयास रहा है कि निर्माता निर्देशक की इसी भावना को यथावत शोधप्रबंध में रखा जाये।

रामायण एवं महाभारत के नाम से धारावाहिक तैयार करना नया काम नहीं था। इसके पूर्व सिनेमा जगत में अनेक धार्मिक चलचित्र तैयार हो चुके थे। स्वयं रामानन्द सागर ने सम्पूर्ण रामायण फिल्म भी बनाई थी परन्तु ये दोनों धारावाहिक, उस समय प्रकाश में आए जब भारतवर्ष की आंतरिक एवं बाह्य सीमाओं पर जाति, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय की कट्टरवादी भावनाओं को बल मिल रहा था। पंजाब, कश्मीर से लेकर आसाम तक तथा समुद्री तटों के समस्त राज्य आतंक एवं उग्रवाद की समस्या से ग्रसित थे। ये सब साम्प्रदायिक उन्माद के कारण हो रहा था। समाज का हर वर्ग साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, शिक्षाविद, समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ सभी अपनी–अपनी पकड़ और क्षमता के आधार पर इन समस्याओं का समाधान खोज रहे थे। संत–साधु या इस कोटि के अन्य विद्वान भी अपनी योग्यता, तर्क एवं क्षमता–कौशल के आधार पर आचार संहिता तैयार कर रहे थे। संविधान में संशोधन भी किए जा रहे थे परन्तु कोई स्थाई समाधान न तो तब निकला न आज निकल पा रहा है। ऐसी स्थिति में सिनेमा जगत के दो जाने माने व्यक्तियों ने एक संकल्प लेकर पौराणिक कथानकों को चित्रित कर, मानव जीवन की उदारता को ब्रह्म विधायी रूप देकर जमीन पर उतारने का प्रयास किया। राम और कृष्ण दोनों ने अपने अवतरण का कारण धार्मिक क्षय और अधर्म का प्रभुत्व बताया है।[5]

भारतीय संस्कृति की विशेषता है –अवतारवाद या पुनर्जन्म। यह विश्व की किसी अन्य संस्कृति में नहीं पाया जाता। आज विज्ञान भी पुनर्जन्म की बात मानने लगा है। शोध की दृष्टि से इस पर अन्य विवेचना की संभावना है। यहाँ पर शोधकर्ता केवल राम और कृष्ण के अवतारी स्वरूप के धार्मिक पक्ष पर ही अपनी बात रख रहा है। पौराणिक ग्रंथों और साहित्यकारों तथा विद्वानों एवं संतों ने धर्म के आधार पर अवतार की कल्पना की है। इसकी प्रामाणिकता में उन्होंने वैदिक संहिताओं के आधार पर युगों,कल्पों के परिवर्तन को स्वीकार कया है। इतिहास भी इसी भूमिका के साथ आगे बढ़ा है। युगों और मन्वन्तरों के बीत जाने पर राम कृष्ण के रूप में मानव समाज के अन्दर सुप्त शक्तियों का पुनरोदय होता है। ऐसी ही शक्ति के संचरण और आह्वान को रामानंद सागर तथा बी.आर.चोपड़ा ने स्वीकार किया। चूँकि भारत वर्ष एक धर्मप्रधान देश है, यहाँ की जनता धर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान है इसलिए दोनों कथाकारों ने अपने धारावाहिकों को धर्म का रूप दे दिया। हम धर्म के उस मूल पक्ष को नहीं रचना चाहते जहाँ उसे केवल अध्ययन या गंभीर दार्शनिक दृष्टि से ही परिभाषित किया जाता है अपितु शोधकर्ता ने धर्म की उन्हीं भावों को शोध प्रबंध में रखा है जो रामानन्द सागर या बी.आर.चोपड़ा का भाव था। धारावाहिकों की कड़ियों के बीच में, प्रारम्भ में और अंत में सूत्रधार के रूप में जो उद्घोष किया जाता था वह निश्चय ही धर्म के आधार पर होता था यह उन कड़ियों को देखने से प्रमाणित हो जाता है।

अंत में शोधार्थी संगीता यही कहना चाहेगी कि रामानन्द सागर द्वारा प्रणीत राम का और कृष्ण का चरित्र तथा बी.आर.चोपड़ा द्वारा प्रणीत कृष्ण का चरित्र युद्ध और शान्ति के बीच फँसे हुए समाज तथा व्यक्ति को एक ऐसा धार्मिक एवं शैक्षिक संबल प्रदान करता है जो स्वाभाविक परिवेश में रहकर अपने जीवन मूल्यों के साथ प्रगति कर सकता है, पुरूषार्थों की प्राप्ति कर सकता है, अपने आत्मबोध का विस्तार कर सकता है तथा भारतीय जीवन की ऋषि प्रणीत शाश्वतता को अक्षुण्ण रख सकता है।

## InHKi Iph

1. दशरूपक – घनञ्जय धनिक, चौखम्बा प्रकाशन – वाराणसी 1980 पृ. 1–4
2. काव्यशास्त्र– डॉ. नागेन्द्र
3. श्रीमदभगवद्गीता– डॉ.राधाकृष्णनन– राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली
4. वही
5. श्रीमदभगवद्गीता– यदा यदाहि.....। रामचरित मानस – जब जब हों हिं धरम के हानी.....।